प्रसिद्ध कला-तीर्थ : राणकपुर

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी

जैन धर्म का उद्देश्य है—मनुष्य की पूर्णता अर्थात् संसारी आत्मा स्वयं परमात्मा बने। यह धर्म मनुष्य में निहित देवत्व को आत्मानुभूति के माध्यम से प्रकट करने की प्रेरणा प्रदान करता है, और उसे इस प्रवृत्ति में सहायता भी देता है। एक ओर जहां जैन पद्धति में कठोर अनुशासन, संयम, त्याग और तपस्या की प्रधानता है वहीं दूसरी ओर कला भी दिव्यत्व की उपलब्धि और उसके साथ तादात्म्यीकरण का अत्यन्त पवित्र साधन है। इस धर्म के अनुयायियों ने सदा ही ललित कलाओं के भिन्न-भिन्न रूपों और शैलियों को प्रोत्साहित किया है।

जैन कला मूलतः धर्म की अनुगामिनी ही रही परन्तु साधना की कठोरता और रुक्षता को कोमल और स्निग्ध रूप प्रदान करने में भी उसने धर्म की विपुल सहायता की है। धर्म के भावनात्मक, भक्तिपरक और लोकप्रिय रूपों के विकास के लिए कला और स्थापत्य की अनगिनत कृतियों के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत हुई। इनके निर्माण में और इन्हें अधिकाधिक रम्य और मोहक बनाने में जैन लोगों ने श्रम और अर्थ खर्च करने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। जैन धर्म की आत्मा जैन कला में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होती है। जैन कला सौन्दर्य-बोध के आनन्द का तो सृजन करती ही है परन्तु उससे भी अधिक आत्मोत्सर्ग, शान्ति, समता और सहिष्णुता की भावनाओं को उद्दीप्त करती है। इस प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

विभिन्न ऐतिहासिक युगों की विविध शैलियों में कला और स्थापत्य की कृतियां यों तो सम्पूर्ण भारत में ही बिखरी हुई हैं परन्तु जैन तीर्थस्थल (तीर्थ क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र आदि) विशेष रूप से सच्चे अर्थों में कला के भण्डार हैं। जैन लोगों ने अपने तीर्थ क्षेत्रों के लिए जिन स्थानों को चुना है. वे पर्वतों की चोटियों पर या एकान्त निर्जन घाटियों में, भौतिकता की चकाचौंध से दूर सांसारिक आपाधापी के जीवन से अलग, हरे-भरे शान्त मैदानों में हैं। ये स्थान आत्मिक चिन्तन और निश्चल ध्यान में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। इन पवित्र क्षेत्रों के सम्पर्क से आत्मा का कालुष्य दूर होकर निर्मलता प्रकट होती है। ये स्थान और यहाँ निर्मित कलात्मक जिनालय और देव-विग्रह मुक्तात्माओं और महान् पुरुषों के सजीव स्मारक हैं।

यहां एक बात यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं कि जैनधर्म में देवोपासना किसी सांसारिक आकांक्षा के लिए या लौकिक संकटों के निवारण के लिए नहीं की जाती। जैनधर्म की मुख्य मान्यता यह है कि संसारी प्राणी अपने सुख-दुःख, और पाप-पुण्य का फल स्वयं ही भोगता है, ईश्वर या परमात्मा का इसमें कोई दखल नहीं है। अतः जैनों के समस्त धार्मिक क्रिया-कलापों का उद्देश्य है—आत्मशुद्धि। आत्मशुद्धि को प्राप्त करने पर ही कर्मों (भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म) से मुक्ति मिल सकती है और तभी आत्मा परमात्मा बन सकता है। तीर्थक्षेत्रों, सिद्धक्षेत्रों, अतिशयक्षेत्रों एवं पुण्य-स्थलों की यात्राएं भी इसी उद्देश्य से की जाती हैं। ये तीर्थयात्राएं पुण्य-सञ्चय और आत्मशुद्धि में सहायक होती हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि इस देश की गौरवशाली सांस्कृतिक थाती को समृद्ध करने में जैनधर्म के अनुयायियों ने विपुल सहयोग दिया है। यदि यह भी कह दिया जाय कि वे अन्य क्षेत्रों की भांति इस क्षेत्र में भी अग्रणी रहे हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने भारत देश के सांस्कृतिक भण्डार को कला और स्थापत्य की अगणित कृतियों से समृद्ध किया है। उनमें से अनेक कृतियों की भव्यता और कला-गरिमा इतनी उत्कृष्ट और अद्भुत बन पड़ी है कि उनकी उपमा नहीं मिलती, वे अपनी मिसाल आप ही हैं और ईर्ष्या योग्य हैं। स्वयं को ही सर्वाधिक जागरूक मानने वाले विदेशी यात्रियों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

जैन मन्दिरों की शैली भिन्न-भिन्न है परन्तु जो भी उनमें भक्तिपूर्वक प्रविष्ट होता है, उस पर एक-सा ही प्रभाव पड़ता है। श्रवणबेलगोला, हलेबिडु, देवगढ़, आबू, राणकपुर आदि के प्रसिद्ध जैनमन्दिर वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। भक्तिप्रवण दर्शनार्थियों पर उनके दर्शन का प्रभाव शान्ति और अनासक्ति के रूप में दृष्टिगत होता है। जैन मन्दिर का तो प्रयोजन ही यही है कि यहां बैठकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु-परमात्मा के गुणों का चिन्तन-मनन शान्तिपूर्वक हो सके और आराधक भगवान् की आर उन्मुख हो सके। यह भावना मन्दिर निर्माण की शैली से जागृत की जाती है। गर्भगृह, शुकनासिका, मुखमण्डप आदि वातावरण को शान्ति और गरिमा प्रदान करते हैं।]

राजस्थान में राणकपुर का त्रैलोक्यदीपक तीर्थाधिराज, श्रीचतुर्मुख युगादीश्वर विहार जैन कला और धार्मिक भावना का सजीव चित्र है। भारतीय स्थापत्य कला का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक यह जिनालय गर्व से अपना सिर ऊंचा कर पन्द्रहवीं शताब्दी की विकसित कला को प्रकट करता है। इस महामन्दिर को देखने के लिए हजारों की संख्या में भारतीय और विदेशी पर्यटक प्रतिवर्ष पहुंचते हैं। पश्चिम भारत के शिखर मण्डित 'मध्यशैली' (मिडिल स्टाइल) में निर्मित जैन मन्दिरों में इसका मुख्य स्थान है।

यह स्थान मेवाड़ में अरावली की सुरम्य उपत्यकाओं के बीच सादड़ी से छह मील दक्षिण में है। इसका निकटतम रेलवे स्टेशन फालना है जो दिल्ली अहमदाबाद मेन रेलवे लाइन पर है। राणकपुर के इस प्रसिद्ध जैन मन्दिर की प्रतिष्ठापना सन् १४३९ में हुई। मन्दिर का निर्माण जैन-धर्मानुयायी धरणाक पोरवाड़ के आदेश से देपाक नामक वास्तुविद् के मार्गदर्शन में हुआ। मन्दिर के सुख-मण्डप के प्रवेशद्वार पर स्थित स्तम्भ पर खुदे हुए अभिलेख से यह जानकारी मिलती है कि इस भव्य चौमुखे मन्दिर के निर्माण में कला और स्थापत्य के महान् आश्रयदाता राणा कुम्भा का महान् योग रहा है। राणा कुम्भा वि० सं० १४९० में राजसिंहासन पर समासीन हुए। इनके राज्यकाल में शिल्पकला की बहुत उन्नति हुई। चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ, जयस्तम्भ, राणकपुर का यह मन्दिर और आबू का कुम्भाशाम राणा की कलाप्रियता के श्रेष्ठ प्रतीक हैं।

"प्राग्वाटवंशावतंस संघपति मागण सुत सं० कुरपाल.........." शिलालेख में 'राणपुर' नाम दिया हुआ है जिससे स्पष्ट है कि 'राणपुर' नाम राणा कुम्भा के नाम पर रखा गया है। 'राण' राणा का और 'पुर' पोरवाड़ का संक्षिप्त रूप है। दोनों नामों को जोड़ कर 'राणपुर' नाम रखा गया है।[1] राणपुर शब्द का प्रयोग और उच्चारण ही शुद्ध है परन्तु वही अब लोक भाषा में राणकपुर या रणकपुर होकर ख्यात हो गया है।

यह मन्दिर ३७१६ वर्गमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। इसमें २९ बड़े कमरे और ४२० स्तम्भ हैं। इससे प्रकट होता है कि इस मन्दिर की योजना बड़ी महत्त्वाकांक्षी रही है। मन्दिर 'त्रैलोक्यदीपक' नाम से भी जाना जाता है। अधुना, राणकपुर में प्रतिवर्ष दो मेले भरते हैं—एक चैत्र कृष्णा दशमी के दिन और दूसरा आश्विन शुक्ला त्रयोदशी के दिन। धरणाक और उनके भाई रत्ना के वंशज आज भी मेले के दिन केशर और इत्र से पूजा करना, आरती उतारना और ध्वजारोहण करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं।

मन्दिर में और भी शिलालेख हैं ; उनसे इसके निर्माता का और जीर्णोद्धार-काल का पता तो चलता है परन्तु इसकी नींव कब पड़ी और इसे बनने में कितने वर्ष लगे—इस बात की सही-सही जानकारी अद्यावधि नहीं हो सकी है। ऐसी जनश्रुति है कि मन्दिर बनने में चालीस वर्ष पूरे हुए। मन्दिर के निर्माण में कितनी धन-राशि खर्च हुई, इस बात का उल्लेख एक भी शिलालेख में नहीं है। राजस्थान के ख्यातिलब्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक 'एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटिज ऑफ राजस्थान' में लिखा है कि यह मन्दिर लाखों रुपयों का है और इसके निर्माण में राणा कुम्भा ने अपने राजकोष से ८०,००० रुपये दिये थे, फिर चन्दा एकत्र कर इसका निर्माण-कार्य पूरा किया गया था। परन्तु इस कथन का आधार क्या है, इस बात का उल्लेख टॉड महोदय ने नहीं किया। उनकी यह बात सामान्यतः मानने योग्य नहीं दीखती, मनगढ़न्त-सी लगती है क्योंकि स्वयं टॉड साहब ने इस मन्दिर के दर्शन एक बार भी नहीं किए थे।

मन्दिर के शिलालेखों से पता चलता है कि इसमें समय-समय पर जैन श्रावकों द्वारा जीर्णोद्धार के कार्य सम्पन्न कराये गये। पहले मन्दिर आज की तरह पूर्ण स्थिति में नहीं था। मन्दिर में अलग-अलग स्थानों पर धन्ना और रत्ना के वंशजों ने तथा अन्य जैन श्रावकों ने भिन्न-भिन्न कालों में तीर्थंकरों की मूर्तियों का निर्माण और उनकी प्रतिष्ठापना का पुनीत कार्य अपने समकालीन जैनाचार्यों द्वारा करवाया था। निर्माण, प्रतिष्ठा और जीर्णोद्धार का कार्य लगभग वि० सं० १९०० तक चलता रहा। जीर्णोद्धार का काम तो आज भी चल ही रहा है।

इस चतुर्मुखी मन्दिर के बहिर्भाग में दो तरह के पत्थरों का उपयोग हुआ है। फर्श पर सेवाड़ी का पत्थर लगा है तो दीवारों पर सोनाणा का पत्थर। चतुर्मुखी मूलनायक प्रतिमा के अतिरिक्त शेष सभी मूर्तियां सोनाणा के पत्थर की ही बनी हैं। मन्दिर का उत्तुङ्ग शिखर ईंटों से बनाया गया है। चतुर्मुखी से मतलब है—चार मूर्तियाँ चारों दिशाओं में मुख किये हुए, एक दूसरी के पीठ से सटी। ये चारों मूर्तियाँ मन्दिर के मूलनायक आद्य (प्रथम) तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ की हैं। सफेद पत्थर से बनी हुई हैं। प्रत्येक मर्ति

१. ऐसी प्रसिद्धि है कि मन्दिर के लिए जमीन इसी शर्त पर दी गई थी कि इसका नाम राणा के नाम पर रखा जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के मुख की ओर एक बड़ा द्वार है। मुख्य द्वार पश्चिम की ओर है। इसके पीछे खुदाई का सुन्दर काम है। मन्दिर का मूल गर्भ-गृह वर्गाकार है। पहले खण्ड पर भी इसी तरह का मन्दिर है जिसमें चार प्रतिमाएं विराजमान हैं। इसकी चारों दिशाओं में भी चार द्वार हैं। दूसरे खण्ड पर जाने के लिए अखण्ड पत्थर की बनी सीढ़ियाँ बड़ी अद्भुत हैं। पृथ्वी-तल के मन्दिर में प्रत्येक द्वार के आगे गूढ़ मण्डप न होकर एक-एक लघु सभामण्डप है। मन्दिर के मुख्य मण्डप की ओर एक बड़ा मन्दिर है। प्रत्येक सभामण्डप के आगे एक-एक छोटा देवालय है। इस भांति चारों कोनों में मन्दिर हैं। इनके आगे चार गुम्बदों का समूह है जो चार सौ बीस स्तम्भों पर आधारित है। प्रत्येक समूह के मध्य गुम्बदों की ऊंचाई तीन मञ्जिल जितनी है। सबसे बड़ा और प्रधान गुम्बद गर्भ-गृह के ऊपर है। मन्दिर के चारों ओर ८६ देहरियां हैं जिन्हें पृथक्-पृथक् करने हेतु मध्य में कोई दीवार नहीं है। ये देहरियां अन्य प्रतिमाएं स्थापित करने हेतु छोटे मन्दिर के आकार की हैं। मन्दिर के उत्तर-पश्चिम की बड़ी देहरी में सम्मेदशिखर जी की खुदाई का काम है। एक शिला पर गिरनार और शत्रुञ्जय की पहाड़ियों की खुदाई का काम है। मन्दिर के बाहर २३वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा सर्प-देह में लिपटी हुई, सहस्रफण युक्त, कायोत्सर्गावस्था में स्थित है। शत्रुञ्जय गिरनार पट्ट, नन्दीश्वर द्वीप पट्ट, सहस्रफण पार्श्वनाथ आदि धार्मिक महत्त्व के उल्लेखनीय शिल्पप्रतीक हैं।

इनके अलावा और भी कई स्थानों पर खुदाई का बहुत ही श्रेष्ठ और कलात्मक काम है। मुख्य मन्दिर में प्रवेश करते ही मुखमण्डप की छत का कटाई का काम अत्यन्त दर्शनीय है। इस एक ही शिला में शिल्पकार ने चाँद की कलाओं का विकास बताया है। रङ्गमण्डप के दो तोरणद्वार अखण्ड पत्थर से बने हैं जिनमें कला सजीव रूप में प्रकट हुई है। रंगमण्डप के गुम्बद के घेरे में चारों ओर नाचती हुई पुत्तलिकाएं खड़ी हैं। मन्दिर में चौरासी तहखाने भी बताये जाते हैं, जो धरती में दूर-दूर तक फैले हुए हैं।

आजकल मन्दिर का सम्पूर्ण प्रबन्ध जैनियों की प्रमुख संस्था आनन्दजी कल्याणजी की पैढ़ी करती है। इसका प्रधान कार्यालय अहमदाबाद में है। एक शाखा सादड़ी में है जो सादड़ी, राणकपुर और राजपुरा के मन्दिरों की देखरेख करती है। इस पैढ़ी ने कई लाख रुपये मन्दिर के जीर्णोद्धार में लगाये हैं, फिर भी अभी बहुत काम होना शेष है। राणकपुर कभी एक बड़ी बस्ती रही है। यदि इस क्षेत्र की खुदाई कराई जाए तो प्रभूत मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हो सकती है और मन्दिर के सम्बन्ध में भी नई बातें प्रकाश में आ सकती हैं।

मन्दिर की कलापूर्ण रचना को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए योरोपीय विद्वान् सर जेम्स फर्ग्यूसन ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर' में लिखा है—"इस मन्दिर का कोई एक भाग ही नहीं, अपितु इसका सारा रूप ही विशेषता-सम्पन्न है। मन्दिर का बासा (पृथ्वीतल) जमीन से बहुत ऊंचा होने से मन्दिर बहुत ऊंचा दिखाई देता है। मन्दिर का प्रत्येक स्तम्भ अलग ढंग से सुसज्जित है। ४२० स्तम्भों में से एक स्तम्भ की अभिकल्पना (कटाई की डिजाइन) दूसरे स्तम्भ की अभिकल्पना से नहीं मिलती। शिल्पकार की छैनी इतनी खूबसूरती से चली है कि उसने पत्थर में हाथी-दांत की सी नक्काशी करने में सफलता प्राप्त की है। जहां तक मेरी जानकारी है, भारतवर्ष में इस कोटि का कोई दूसरा मन्दिर या भवन नहीं है जिसमें स्तम्भों पर इतना सुन्दर और प्रभावशाली निर्माण कार्य हुआ हो। मन्दिर के निर्माण के लिए ३७१६ वर्गमीटर जमीन घेरी गई है जो मध्ययुग के योरोपीय मन्दिरों के बराबर है परन्तु कारीगरी और सौन्दर्य में यह मन्दिर योरोपीय मन्दिरों से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर है।"

मन्दिर की प्रत्येक शिला और पत्थर पन्द्रहवीं शताब्दी की कला का जीवन्त नमूना है। इस अद्वितीय कलातीर्थ की कला का वर्णन करने का सामर्थ्य लेखनी में नहीं। लेखनी साक्षात् दर्शन से हृदय में उत्पन्न होने वाले आनन्द को अभिव्यक्त नहीं कर सकती है।

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम्।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org